International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 6; June 2017; Page No. 216-219

भारत में न्यायिक नियुक्ति प्रक्रियाः कॉलेजियम व्यवस्था बनाम न्यायिक नियुक्ति आयोग

सुमन चौधरी
शोध छात्रा, राजनीति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय भारत।

प्रस्तावना

संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन संघात्मक संविधान का मूल तत्व है। यह विभाजन प्रायः एक संविधान द्वारा किया जाता है जो देश की सर्वोच्च विधि होता है। चूंकि सरकारों की शक्तियों का विभाजन एक लिखित संविधान द्वारा होता है, अतएव यह भी सम्भव है कि वे संविधान से संबंधित उपबन्धों की व्याख्या अपने–अपने पक्ष में करें। इस शक्ति–विभाजन को बनाये रखने के लिए, जिससे कि विभिन्न सरकारें एक–दूसरे के कार्य–क्षेत्र में हस्तक्षेप न करें, संविधान के उपबन्धों की सही व्याख्या आवश्यक है, इसके लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता होती है जो स्वतंत्र एवं निष्पक्ष हो और केन्द्रिय तथा राज्य सरकारों के बीच विवादों को निष्पक्षता से निपटा सके। संघीय व्यवस्था में यह कार्य न्यायपालिका को सौंपा गया है। भारतीय संविधान के उपबन्धों की व्याख्या के संबंध में अन्तिम निर्णय देने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को ही प्राप्त है। इसके द्वारा की गयी संविधान की व्याख्या से सभी आबद्ध होते है, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षक कहा गया हैं।

सर्वोच्च न्यायालय न केवल संविधान का वरन् नागरिकों के मूल अधिकारों का भी संरक्षक है। जी. आस्टिन के शब्दों में, सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण का कार्य सौंपकर वस्तुतः 'सामाजिक क्रान्ति के संरक्षक' का भार सौंपा गया है। यह सामाजिक हित तथा व्यक्तिगत हित के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करता है। यह देश का सर्वोच्च न्यायालय है, जिसे देश की विधियों की व्याख्या के संबंध में अन्तिम निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है। यह सिविल और फौजदारी मुकदमों का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय हैं।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का आधार स्तम्भ है। इसमें तीन शर्ते निहित है – (1) न्यायपालिका को सरकार के अन्य विभागों के हस्तक्षेप से मुक्त होना चाहिए। (2) न्यायपालिका के निर्णय कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के हस्तक्षेप से मुक्त होने चाहिए। (3) न्यायाधीशों को बिना किसी भय तथा पक्षपात के न्याय करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। भारतीय संविधान द्वारा न्यायपालिका को स्वतंत्र रखने के लिए कई व्यवस्थाऐं की गई हैं। न्यायाधीशों को स्वतंत्र व निष्पक्ष बनाने के लिए संविधान के द्वारा सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है जो मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों से परामर्श के बाद नियुक्त करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्तियों को लेकर 1973 में जब विवाद पैदा हुआ तो उसके फलस्वरूप कॉलेजियम व्यवस्था आरम्भ हुई, परन्तु उसके पश्चात इस प्रणाली में भी न्यायालयों में भ्रष्टाचार की बढ़ती समस्या के कारण कमियां देखने को मिली। परिणामस्वरूप संसद द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का विधेयक पारित कराया गया। न्यायपालिका ने इस विधेयक को न्याय व्यवस्था में राजनीतिक हस्तक्षेप करने का आरोप लगाते हुए असंवैधानिक घोषित कर दिया, जिसके कारण संसद व न्यायपालिका 1973 की स्थिति में पुनः खड़ी हो गई।[1]

न्यायिक नियुक्ति प्रक्रिया का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन भारतीय विधिवेत्ताओं ने न्याय के प्रशासन को नियमित करने के लिए विधि का विकास करने की ओर बहुत ध्यान दिया। इस विषय से संबंधित रचनाओं में सुझाव दिया गया कि सर्वोच्च न्यायालय राजधानी में अवस्थित होनी चाहिए। राजा द्वारा निचले न्यायालय स्थापित किये जाते थे। प्राचीन भारत में एक सर्वोच्च न्यायालय होता था, जिसकी अध्यक्षता राजा करता था और कुछ लोगों के अपने न्यायालय होते थे, जिन्हें स्मृतियां न्याय प्रदान करने की शक्ति रखने वाले न्यायालयों के रूप में मान्यता प्रदान करती थी। न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी योग्यताएं निर्धारित थी, परन्तु इसमें ब्राह्मण को वरीयता दी जाती थी।[2]

मुगल काल में न्यायिक प्रणाली बगदाद और मिस्त्र के खलीफाओं के आदर्श पर थी और उसका स्वरूप लगभग वही था, जैसा कि मुस्लिम विधिशास्त्रियों ने निर्धारित किया था। बादशाह का सर्वोच्च न्यायालय अपिल का अन्तिम न्यायालय होता था। बादशाह के नीचे दीवाने आला और मुख्य काजी होते थे। जिनकी नियुक्ति बादशाह करता था। प्रांतों में सूबेदार, दीवान और प्रांतीय काजी और सिकदार थे और परगनों में अमीन तथा काजी न्याय करते थे।[3]

ब्रिटिश काल में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट द्वारा की गई जिसमें एक मुख्य न्यायमूर्ति तथा तीन अन्य न्यायाधीश होते थे, ये सभी कम से कम पाँच वर्ष के अनुभव वाले बैरिस्टर होते थे और इनकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी। अन्तिम अपीलीय न्यायालय प्रिवी काउंसिल था।[4]

परन्तु स्वतंत्रता के बाद सर्वोच्च न्यायालय एक स्वतंत्र संस्था के रूप में प्रकट हुआ। भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालयों की व्यवस्थाा की गई है। इसके द्वारा न्यायपालिका को अन्य अंगों से स्वतंत्र व निष्पक्ष बनाना था।

भारतीय संविधान में न्यायिक नियुक्ति प्रक्रिया

अनुच्छेद 124 भारत के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का उपबन्ध करता है। अनुच्छेद 124(3) के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशें को राष्ट्रपति नियुक्त करता है। किन्तु इस मामले में राष्ट्रपति को कोई विवेक की शक्ति प्राप्त नहीं है। अनु. 124(3) यह कहता है कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिसे इस प्रयोजन के लिए वह आवश्यक समझे, ही करेगा। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति सर्वदा मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से करेगा।[5] न्यायाधीशें की नियुक्ति करने की राष्ट्रपति की शक्ति एक औपचारिक शक्ति है, क्योंकि वह उस मामले में मन्त्रिमण्डल की सलाह से कार्य करता है। कार्यपालिका को न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में ऐसे व्यक्तियों से परामर्श करना आवश्यक है जो इस विषय पर परामर्श देने के लिए पूर्ण रूप से योग्य है (सर्वोच्च और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से)।[6]

एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ[7] मामले में न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि परामर्श का अर्थ सहमति नहीं है, किन्तु 1993 में सुप्रीम कोर्ट, एडवोकेट्स बनाम भारत संघ[8] के निर्णय में न्यायालय

ने यह स्पष्ट किया कि सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में किसी भी न्यायाधीश की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के राय के अनुरूप ही की जा सकती है।

सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्तियों पर विवाद व कॉलेजियम प्रणाली

1950 से 1973 तक व्यवहार में यह था कि सर्वोच्च न्यायालय में वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। लेकिन 1973 में न्यायाधीशों की नियुक्ति मामले पर एक महत्वपूर्ण सांविधानिक विवाद उठ खड़ा हुआ। 25 अप्रेल, 1973 को केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य[9] के मामले में दिये गये निर्णय के कुछ घंटो के पश्चात ही सरकार ने अप्रत्याशित ढंग से उपर्युक्त 22 वर्षो की परम्परा को तोड़ दिया और वरिष्ठता–क्रम की उपेक्षा करके न्यायमूर्ति श्री अजित नाथ राय को भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय सरकार के विरूद्ध था। न्यायालय के तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों श्री जे.एम. शेलट, श्री के.एस. हेगड़े तथा श्री एस.एन. ग्रोवर ने, जिनकी वरिष्ठता की उपेक्षा कर श्री राय को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया गया था, अपने पदों से त्यागपत्र दे दिया।

सरकार के इस निर्णय की बड़ी तीव्र आलोचना की गई। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने इस कदम की आलोचना करते हुए कहा कि यह नियुक्ति विशुद्ध राजनैतिक आधार पर की गई है और इसका योग्यता तथा वरिष्ठता से कोई संबंध नहीं हैं। केन्द्रिय सरकार ने जो कारण बताये थे वे पूर्णतया असन्तोषजनक थे तथा विधि आयोग की सिफारिशों से कोई मेल नहीं खाते। सरकार के उपर्युक्त निर्णय से स्पष्ट था कि वह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को नष्ट करना चाहती थी। सरकार की इस घटना के बाद इन पदों पर केवल ऐसे ही व्यक्तियों की नियुक्ति हो सकेगी, जिनकी प्राथमिक अर्हता सरकार के प्रति प्रतिबद्धता होगी, चाहे वह वरिष्ठता के क्रम में कितना ही नीचे क्यों न हो। अतः न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि एक स्वस्थ परम्परा की शुरूआत की जाए जिसके द्वारा न्यायाधीशें की नियुक्ति के संबंध में कार्यकारिणी के मनमाने हस्तक्षेप को रोका जा सके।[10]

न्यायमूर्ति भगवती का इस स्थिति में सुधार के लिए सुझाव था कि मुख्य न्यायमूर्ति के नाम का सुझाव देने के लिए पैनल बनाया जाए। किन्तु 16 अक्टूबर 1993 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एडवोकेट्स–ऑन–रिकॉर्ड एशोसिएशन[11] तथा अन्य बनाम भारत संघ में दिये गये निर्णय में एस.पी. गुप्ता वाले निर्णय को उलट दिया गया। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति की सारी शक्ति अपने ही हाथों में ले ली। मुख्य न्यायाधीश दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों को चयन प्रक्रिया में शामिल कर सकता है। इस नई प्रक्रिया के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए जो कुछ नाम सरकार के पास पहुंचे, उन पर सरकार को कुछ गंभीर संदेह होने की बात कही गई। मामला काफी विवादग्रस्त हो गया और अंततः राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय से ही सलाह मांगी।[12] सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी सलाह में मुख्यतः अपने 1993 के निर्णय को सही ठहराया कितु कुछ सुझाव दिये जिनके अनुसार मुख्य न्यायाधीश के लिए यह जरूरी कर दिया जाना था कि वह वरिष्ठतम चार न्यायाधीशों से सलाह करे और यदि चार में से दो किसी नाम पर असहमत हो तो उस नाम को सूची से निकाल दिया जाए अर्थात मुख्य न्यायाधीश और कम से कम तीन और वरिष्ठ न्यायाधीश जिन नामों पर सहमत हो उसी को नियुक्त किया जा सके।[13] लेकिन कॉलेजियम व्यवस्था पर धीरे–धीरे सवाल उठने लगे। यह गौरव की बात है कि हमारे देश में न्यायपालिका पर आमजन का विश्वास बना हुआ है, लेकिन कॉलेजियम व्यवस्था के माध्यम से कुछ ऐसे न्यायाधीशों(सौमित्र सेन, पी. दिनाकरन, रामास्वामी) की नियुक्ति हुई, जिनके बारे में प्रश्न उठे।

न्यायमूर्ति पी. दिनाकरन प्रकरण ने न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया पर फिर एक बार सवालिया निशान लगा दिया है कि एक ऐसे जज जिस पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगे हो, उसके नाम की सिफारिश सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति कैसे की जा सकती है? हालांकी भ्रष्टाचार के आरोपों के सामने आने पर सूची में से उनका नाम हटा लिया गया तथा एक समिति को उनके खिलाफ लगाए आरोपों की जांच का आदेश भी दे दिया गया। परन्तु इस पूरे प्रकरण ने सर्वोच्च न्यायालय की छवि को ठेस पहुंचाई है।[14]

कॉलेजियम व्यवस्था की आलोचनाएँ

जस्टिस जे. चेलमेश्वर के अनुसार ''मुझे अपने अनुभवों से यह लगता है कि कॉलेजियम में लोग गुट बना लेते हैं। राय और तर्क रिकॉर्ड किए बिना ही चयन हो जाता है। दो लोग बैठकर नाम तय कर लेते हैं और बाकी से 'हां' या 'ना' के लिए पूछते है। कुल मिलाकर कॉलेजियम सबसे अपारदर्शी कार्यप्रणाली बन गई है। इसलिए मैं अब कॉलेजियम की मीटिंग में शामिल नहीं हो पाऊंगा।''

1. यह कितनी दोषपूर्ण, अपारदर्शी एवं पक्षपातपूर्ण है, इसका अनुमान केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि विगत दो दशकों में राजनीति की भांति भारत की उच्च न्यायपालिका में भी भाई–भतीजावाद प्रवेश कर गया है। दी नेशनल लॉयर्स कैम्पेन फॉर जुडीशियल ट्रांसपैरेंसी एण्ड रिफॉर्म्स की एक रिपोर्ट के अनुसार 2014–15 में सर्वोच्च न्यायालय में कार्यरत 28 न्यायाधीशों में से नौ न्यायाधीश पूर्व न्यायाधिशों के सगे सम्बन्धी थे, जबकि उच्च न्यायालयों में कार्यरत् कम से कम एक तिहाई न्यायाधीश पूर्व न्यायाधीशों एवं विधि विशेषज्ञों के सगे–सम्बन्धी थे। ऐसे विद्वान न्यायाधीशों में अधिक से अधिक वे थे, जिनकी नियुक्ति बार काउंसिल से की गई थी।
2. कॉलेजियम व्यवस्था भारत की गणतन्त्रात्मक लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली पर भी चोट करती है। न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त के नाम पर संसद के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही के सिद्धान्त की भी अनदेखी की गई हैं।
3. जजों की नियुक्ति में अधिकार पर विवाद संविधान की सर्वोपरिता का नहीं, वरन् राजसत्ता के एकाधिकार का है।

मौजूदा कॉलेजियम सिस्टम का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह गोपनीयता के अंधेरे में काम करता है। ऐसे देश में जहाँ पर पारदर्शिता की संस्कृति विकसित करने में न्यायपालिका की सबसे बड़ी भूमिका रही हो, न्यायाधीशों की नियुक्ति जैसे अहम मामले में सब कुछ गोपनीय रखने के प्रति उसका आग्र ही होना समझे से परे हैं।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की प्रक्रिया अनु. 124 में उल्लेखित है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तीन निर्णयों की एक शृंखला में निर्णय देकर इस उपपबंध को नवीन रूप दिया गया। परिणाममतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और 4 वरिष्ठतम न्यायाधीशों से मिलकर एक समूह (कॉलेजियम) बन गया। यह समूह न्यायाधीशों का चयन करता था। इसमें मंत्रिपरिषद् की भूमिका नगण्य सी रह गई थी।

संविधान संशोधन अधिनियम (121वां) 2014 और राष्ट्रीय नियुक्ति आयोग अधिनियम, 2014 ने नियुक्ति की पूरी प्रक्रिया को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया है।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनाया जाना तय हुआ –

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, पदेन अध्यक्ष

(ख) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से वरिष्ठता में ठीक नीचे के दो अन्य न्यायाधीश, पदेन सदस्य

(ग) विधि और न्याय मंत्री, पदेन सदस्य

(घ) दो विख्यात व्यक्ति जिनके नाम एक समिति द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे। यह समिति निम्नलिखित से मिलकर बनेगी –

1. प्रधानमंत्री
2. भारत का मुख्य न्यायमूर्ति
3. लोकसभा में विपक्ष के नेता (यदि कोई नेता नहीं है तो एकल सबसे बड़े विरोधी दल का नेता) विख्यात व्यक्तियों में से एक, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक या महिलाओं में से होगा।

विख्यात व्यक्ति 3 वर्ष के लिए नाम निर्दिष्ट किया जाएगा और पुनः नामनिर्देशन का पात्र नहीं होगा।

इस विधेयक को लोकसभा में 13 अगस्त को व राज्य सभा ने 14 अगस्त 2014 को पारित किया। दिसम्बर 2014 तक 16 विधानसभाओं का अनुमोदन प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् इसे राष्ट्रपति के पास भेजा गया, जिसे 30 दिसम्बर 2014 को राष्ट्रपति ने अपनी सहमति प्रदान कर दी,[15] लेकिन सर्वोच्च न्यायालय की पाँच सदस्यीय पीठ (न्यायमूर्ति जे.एस. खेहर, जे. चेलमेश्वर, एम.बी. लोकुर, कुरियन जोसफ तथा एके गोयल) ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (छश्र।ब) कानून को असंवैधानिक करार दे दिय तथा 99वें संविधान संशोधन को अवैध घोषित कर दिया।[16]

लेकिन राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को खारीज करने के सर्वोच्च न्यायालय के फैसलें पर केन्द्रिय वित्त मंत्री अरूण जेटली ने कहा कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता संविधान का मूल आधार है, परन्तु उसे मजबूत बनाने के लिए संसदीय सम्प्रभुत्ता को कमजोर नहीं बना सकते क्योंकि वो न सिर्फ संविधान के मूल आधारों में से एक है, बल्कि हमारे लोकतंत्र की आत्मा है।[17] इसे जेटली ने अनिर्वाचितों की तानाशाही कहा है।

लेकिन पीठ के अनुसार भ्रष्ट सरकार भ्रष्ट न्यायपालिका चाहेगी और भ्रष्ट जजों की नियुक्ति करेगी। इसलिए नेताओं को जजों की नियुक्ति में शामिल नहीं होना चाहिए। नेताओं के हितों का टकराव हमेशा रहता है और यह व्यवस्था पूरी न्यायपालिका को दूषित करेगा। इस प्रकार न्यायिक नियुक्ति प्रक्रिया पर सरकार व न्यायपालिका के बीच तानाकसी चल रही हैं।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की आलोचना

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को न्यायपालिका द्वारा असंवैधानिक घोषित किये जाने के कुछ प्रमुख कारण बताये हैं जो निम्नलिखित है –

NJAC अधिनियम की आलोचना के कारण –

1. यह संविधान के बुनियादी स्वरूप के खिलाफ हैं।
2. यह संविधान के अनु. 50 के उल्लेख 'कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण'' के विरोध में है।
3. चूंकि कॉलेजियम में न्यायपालिका की प्रधानता थी, किन्तु इसके 6 सदस्यों में 3 न्यायाधीश हैं शेष तीन में न्यायमंत्री और दो प्रतिष्ठित व्यक्ति होंगे, जिनके चयन में पारदर्शिता में संदेह हैं।
4. विवाद का सबसे बड़ा मुद्दा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की धारा 6(6) है, जो आयोग के 6 सदस्यों में से किन्हीं 2 सदस्यों को अन्य लोंगो की अनुशंसाओं को निरस्त करने का अधिकार देती हैं।

यह भी कहा गया है कि दो प्रतिष्ठित व्यक्ति जिनके चुनाव में मुख्य न्यायाधीश अल्पमत में हैं, राजनीतिक पक्ष ले सकते हैं और तीन न्यायालय सदस्यों द्वारा अनुशंसित नियुक्तियों को रोक सकता हैं।

5. राजनेता भ्रष्ट और नाकाबिल हैं।

हालांकि कॉलिजियम व्यवस्था में कई दोष है, परन्तु उसका विकल्प हम राष्ट्रीय नियुक्ति आयोग नहीं मान सकते। भारतीय व्यवस्था में न्यायपालिका की निष्पक्षता की पुनः स्थापना हेतु हमें कॉलेजियम व्यवस्था में सुधार करने की आवश्यक हैं।

कॉलेजियम व्यवस्था में सुधार के सुझाव

1. उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के जजों की नियुक्ति में विचारणीय नामों का चयन करने का हक सिर्फ कॉलेजियम को हो।
2. एक न्यायिक नियुक्ति आयोग सुझाए गए नामों पर विचार करे और सर्वाधिक उपर्युक्त उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश भेजे। आयोग का दायरा ब्रिटेन, जहाँ इसके लिए पन्द्रह सदस्यीय समिति है, की भांति बड़ा हो और उसमें सेवारत जज, दूसरे न्यायविद्, कानून विशेषज्ञ और कानूनमंत्री भी हो।
3. केवल उसी व्यक्ति को जज नियुक्त किया जाये जिसे कॉलेजियम ने चुना हो और आयोग ने सिफारिश की हो।[18]
4. न्यायाधीशों की नियुक्ति से पूर्व उनकी पृष्ठभूमि कि व्यापक छानबीन जरूरत है। न्यायाधीश के रूप में नामित किये जाने वाले व्यक्ति के नाम को सार्वजनिक करके देश के आम एवं खास लोगों से उसके बारे में जानकारी माँगनी चाहिए।
5. न्यायाधीशों की जवाबदेही तय होनी चाहिए।

यद्यपि जजों की नियुक्ति प्रक्रिया में देश के मुख्य न्यायाधीश (और कॉलेजियम) की प्रमुख भूमिका होनी चाहिए, परन्तु इसमें सीमा और संतुलन (चैक एंड बैलेन्स) तथा कार्यपालिका की राय ली जाने की व्यवस्था भी जरूर होनी चाहिये।

निष्कर्ष

हमारे देश में न्यायाधीशों को बहुत महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई है। वे नागरिक अधिकारों के प्रहरी हैं। देश के करोड़ो लोग अपनी परेशानी के क्षणों में अदालतों पर भरोसा करते हैं। बाढ़, सूखा और महामारी जैसे प्राकृतिक आपदाओं में भी आम आदमी को अदालतों ने राहत पहुंचाई है। ऐसे में न्यायाधीश केवल न्यायपालिका के परिवार का सदस्य मात्र नहीं है। इसलिए उनकी नियुक्ति को न्यायपालिका का आतंरिक मामला नहीं माना जा सकता। न्यायपालिका की प्रतिष्ठा उसके किसी भी इकाई की प्रतिष्ठा से बहुत बड़ी है और न्यायपालिका की प्रतिष्ठा तब बढ़ेगी, जब उसमें अच्छे लोगों की नियुक्ति होगी।

कॉलेजियम व्यवस्था पर चल रही बहस के दो छोर है। एक का दावा है कि हमारे देश के सर्वशक्तिमान न्यायाधीशों की नियुक्ति और तबादले का अधिकार कुछ न्यायाधीशों के पास केवल इसलिए रहना चाहिए, क्योंकि वे न्यायपालिका परिवार का हिस्सा होने के कारण उनके बारे में बेहतर समझते हैं। दूसरा छोर कहता है कि उसमें आम जनता के नुमाइंदों की भी भागीदारी होनी चाहिए, क्योंकि न्यायाधीश केवल न्यायपालिका के ही नहीं, बल्कि पूरे समाज के हितरक्षक होते हैं और उनकी नियुक्ति प्रक्रिया में आमजनता की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को स्वर मिलना चाहिए।[19]

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय और कोलकता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश टी.एस.कर्णन के मध्य हुए विवाद ने न्यायिक नियुक्ति

प्रक्रिया की वैधता पर सवाल खड़े कर दिए हैं। क्योंकि कर्णन की नियुक्ति करने वाले कॉलेजियम के एक सदस्य न्यायाधीश ने कर्णन की नियुक्ति के लिए सार्वजनिक रूप से माफी मांगी थी।
लेकिन कॉलेजियम व्यवस्था में कमियों के कारण न्यायिक नियुक्ति आयोग को भी उचित नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि आयोग ने मुख्य न्यायाधीश की शक्ति को कम किया, कॉलेजियम प्रणाली को कमजोर किया, कार्यपालिका जिसका मुकदमों में हित है, उसे और बाहरी तत्वों को चयन प्रक्रिया का भाग बनाया, गैर न्यायिक सदस्यों को वीटो जैसा हथियार भी दे दिया। इससे न्यायालय की स्वतंत्रता बाधित होती है। इन आधारों पर सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को असंवैधानिक घोषित किया।
अतः एक लोकतंत्र में कोई पूरी तरह सही निर्वाचक नहीं होता, न कोई आदर्श विधान मंडल, न आदर्श कार्यपालिका और न ही एकदम त्रुटिहीन न्यायपालिका। वे अपनी–अपनी कमियों के रहते हुए, एक दूसरे से संवाद करते हैं तथा राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति को संभव बनाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महेन्द्र प्रसाद सिंह, भारतीय शासन और राजनीति, औरियंट ब्लैकस्वांन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011 पृ. 210–211
2. प्रकाश नारायण नाटाणी, भारत में न्यायपालिका, डायमण्ड प्रिटिंग प्रेस, जयपुर 2014, पृ. 301
3. उपरोक्त, पृ. 18–20
4. उपरोक्त, पृ. 25–27
5. डी.डी. बसु, भारत का संविधान–एक परिचय, लैक्सिसनेक्सिस बैटरवर्धस, वाधवा नागपुर, 2012, पृ. 301
6. पूर्ववर्ती प्रकाश नारायण नाटाणी, पृ. 3–5
7. एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 149
8. सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1993, एस.सी.सी. 44
9. केशवानन्द भारती बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1973, एस. सी. 1461
10. पूर्ववर्ती, प्रकाश नारायण नाटाणी, पृ. 43–44
11. एडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड ऐसोसिएसन तथा अन्य बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1994, एस.सी. 268
12. स्पेशल रेफरेंस नं. 1, 28 अक्टूबर 1998, 7 एन.एस.सी.सी. 739
13. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान–भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 2004, पृ. 194–195
14. पूर्ववर्ती, महेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. 212
15. ब्रजकिशोर शर्मा, भारत का संविधान, पी.एच.एल. लर्निंग प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 2015, पृ. 220
16. जनसत्ता – 16 अक्टूबर 2015
17. एन.डी.टी.वी. इंडिया 18 अक्टूबर 2015
18. पी. चिदंबरम, जनसत्ता – 31 अक्टूबर 2015
19. दैनिक जागरण – 12 दिसम्बर 2015